UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182030
UNIVERSAL
LIBRARY

लक्ष्मण-शक्ति

(खण्ड-काव्य)

लेखक

राजाराम श्रीवास्तव

बी० एस-सी०, एल-एल० बी०

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१६४४

मूल्य ॥।)

Printed and published by
K. Mittra, at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

"मानस" की एक लहर

को

समर्पित

महाशक्ति

—महामाया !

—हाँ, महाप्रभु ।

—सृष्टि-निर्माण का कार्य...

—हो रहा है, महाप्रभु ! वह देखिए—

महाप्रभु ने नीचे दृष्टि फेंकी ।

(प्रकृति-तत्त्व रविमण्डल के निर्माण में संलग्न थे । ग्रह, नक्षत्र, उपग्रह, सूर्यादि बाजीगर के गोलों की नाईं बनते जाते थे । प्रचण्ड पवन, विप्लवकारी विज्जु-शक्ति, विध्वंसक अग्निराशि, प्रलयंकर वारुणी जल सैन्य नक्षत्रों को उछाल उछाल कर इधर-उधर स्थानारूढ कर रहे थे । एक भीषण हलचल थी, भयंकर उथल-पुथल थी, भयानक गर्जन और कड़कन थी । पञ्चतत्त्व अपनी सम्पूर्ण शक्ति से क्रिया निमग्न थे । देखते ही देखते ग्रह नक्षत्रादि सीमाबद्ध होकर प्रतिष्ठित हो गये । प्रत्येक पर शासन करने के निमित्त वही तत्त्व-शक्तियाँ भी नियुक्त हो गईं ।)

महाप्रभु के समीप बैठा हुआ आदिपुरुष यह सब देखकर काँप उठा ।

—'वह पृथ्वी ! उस पर तुम्हें अवतरित होना होगा' महाप्रभु ने कहा ।

—'महाप्रभु इन शक्तिशाली तत्त्वों के मध्य मेरा रहना दुस्तर है, मुझे यह श्राप न दीजिए ।' करबद्ध पुरुष ने याचना की ।

—'इसमें सन्देह नहीं, पुरुष ! ये तत्त्व अतुल शक्तिसम्पन्न और महान् हैं । परन्तु मैंने तुम्हारे ब्रह्म-प्रकोष्ठ में ऐसी शक्ति स्थापित कर दी

है कि जिसके द्वारा तुम इन समस्त तत्त्वों को वशीभूत करके उन पर शासन कर सकते हो। पुरुष तुम अपने को असमर्थ मत समझो। तुम मेरी सर्वोत्कृष्ट कृति हो। इस बृहतातिबृहत् सृष्टि-विधान के रहस्य को तुम स्वतः समझ लोगे और सर्वविजयी होगे। इतना ही नहीं तुम उस शक्ति के द्वारा मेरे पास तक पहुँच सकते हो।' महाप्रभु ने कहा।

पुरुष महाप्रभु की बातें सुन रहा था, सोच रहा था, और चिन्तित था। प्रभु की आज्ञा का पालन करना ही होगा।

—'किन्तु आवश्यकता पड़ने पर क्या आपको अपने पास तक मैं न बुला सकूँगा?' पुरुष ने पूछा।

—'मेरी छाया तुम पर रहेगी। मैं तुम्हारे पास तक आ सकूँ, यह सम्भव नहीं।' महाप्रभु बोले।

—'परन्तु मैं तो भगवन्! ऐसी शक्ति चाहता हूँ कि आपको अपने पास बुला सकूँ' पुरुष ने कहा।

पुरुष ने आग्रह किया।

करबद्ध विनम्र पुरुष के नेत्र सजल हो उठे।

—'मैंने वह महाशक्ति भी तेरे नेत्र-कोरकों में रख दी, पुरुष!' महाप्रभु बोले 'यह दो बूँद मुझे जहाँ चाहें बुला सकेंगे।'

पुरुष हर्षोत्फुल्ल हो पृथ्वी पर उतर आया। उसके नेत्र सजल ही रहे, केवल भाव बदल गया।

—राजाराम श्रीवास्तव

युद्ध

युग देख रहा था भूतल में
फिर देव-दनुज का महायुद्ध।
इस ओर देव श्रीराम शुद्ध
था मूढ़ दनुज रावण विरुद्ध।

युग देख रहा था लंका में
नर-नारायण का महायुद्ध।
इस ओर महाप्रभु राम सौम्य
उस ओर निशाचर-पति अबुद्ध।

प्राची मुसका उठती जिसके
चरणों की अरुणाभा लेकर।
झंकृत हो उठते मलय तार
जिसकी साँसों के स्वर छूकर।

जिसकी पद्-कम्पन ध्वनि भरती
निर्झरिणी में संगीत मृदुल।
जिसके दृग-तारक से नभ के
खिल उठते तारक कुसुम विपुल।

बस एक दृष्टि से खिँच जाती
ग्रह्-नक्षत्रों की परिधि रेख।
जो भूत भविष्यत् वर्तमान
त्रैकाल सहज ही रहे देख।

जिसकी चितवन की करवट से
होता क्षण में युग परिवर्तन।
क्षण में हो जाता अग्निकाण्ड
क्षण में हो जाता जलप्लावन।

जिसकी दृग-स्मिति से छा जाता
वसुधा के कण कण में सतयुग।
जिसकी भ्रूवंकिम से क्षण में
घिर आता अति प्रचण्ड कलियुग।

जो मायापति है खेल रहा
नभ में इतने कंदुक उछाल।
जिसकी पद-रज से ज्योतित हैं
नीलाम्बर के तारक विशाल।

जिसकी इच्छा पर प्रकृति-नटी
रचती है भौगोलिक विधान।
जो भर जाता कर्तव्य-ज्ञान
जग में छितराता जीव-प्राण।

संचालित रखता है नियमित
आने जाने का संसृति क्रम।
जीवों को कर्तव्यानुसार
वितरित करता है शांति-श्रम।

जो संचालक जो संहारक,
जिससे निर्मापित हैं सुख दुख।
जो है सृष्टी का मध्य, निलय
जो है इस संसृति का आमुख।

जो है अवेश, जो है अदेश
जो है अशेष जो सर्व ईश।
जो है मुनीश जो है ऋषीश
जो है क्षितीश जो अम्बरीश।

उत्तर पूरब दक्षिण पच्छिम
पाताल, गगन जिसको छूकर
हो उठते जाग्रत, लोकों में
जो बिखराता कर शीन प्रखर।

वह आज बने मानव आजे
लंका में कर ले धनुषबाण।
निशिचर दल के सम्मुख आये
हरने कि प्राण देने कि त्राण।

लक्ष्मण, जिसकी भुज कम्पन से
भू पर होता वीरत्व उदय।
जिसके रोरित लोचन के सँग
है डोल रहा भू मध्य प्रलय।

भ्रू वंकिम से आह्वानित हो
उठते रिपु दल के मृत्यु काल।
जिसके कर से निकले शायक
हैं काल व्याल भीषण कराल।

जिस बालक को भयभीत न कर
पाये फरसाधर परशुराम।
जिसने सबकी अवहेला की
उर में धर केवल एक राम।

जिसकी काया में जाग्रत हो
आया भू पर शौर्यावतार।
छितराती यम के दूत यहाँ
चम चम कर जिसकी अस्त्रधार।

जिसने जग का वैभव छोड़ा,
छोड़ा है जिसने राजमहल।
माता छोड़ी पत्नी छोड़ी
छोड़ी माया की चहल-पहल।

जिसने सब छोड़ा क्रीट-मुकुट
राजसी सभी उत्सव प्रमोद।
छोड़े अनुचर छोड़े सहचर
छोड़ा गुरु छोड़ा सब विनोद।

चौदह वर्षों तक एक नियम
चौदह वर्षों तक एक नाम।
चौदह वर्षों तक बस इक व्रत
बस राम राम बस राम राम।

चौदह वर्षों तक एक लक्ष्य
चौदह वर्षों तक एक धेय।
चौदह वर्षों तक चैन न सुख
बस प्रभु पद-सेवा एक श्रेय।

वह एक व्रती वल्कलधारी
जो त्यागी स्वतः बना तापस।
श्री राम हेतु जाने चौदह
जीवन के ग्रीष्म, शीत, पावस।

वह लक्ष्मण वह दुर्धर्ष व्रती,
जिससे कम्पित होते दिग्गज।
नभ-चुंबी गिरि पाषाण शिखर
क्षण में होते जिसकी पद-रज।

भुजदण्ड काल-कोदण्ड सदृश
भस्मक अंगारे नेत्र युगुल।
इस वक्र दृष्टि से हो जाता
है भस्म निमिष में रिपु संकुल।

वह, मातु जानकी के तस्कर
रावण के प्रति छेड़ेंगे रण।
निर्वंश उसे करने का कर
बैठे हैं मनसा में निज प्रण।

वह हनूमान, वह महावीर
वह मारुत-सुत अंजनि-कुमार।
विचलित कर देती अरिदल को
जिसकी इक साधारण हुँकार।

वह स्वेच्छावेशी शूर वीर
लंकावासी जिससे परिचित।
जिसका बल सीमाबद्ध नहीं,
थी शक्ति जिसकी अतुल अमित।

जिसके द्वारा इस लंका की
कंचन काया जल हुई क्षार।
जिसने संहारे वीर विपुल
औ' रावण-सुत अक्षयकुमार।

जो वज्र सदृश कुलिशांग गौर
रोरित कपाल सिन्दुरित वदन।
कपि-श्रेष्ठ, भक्तवर, पराक्रमी,
द्रुतगामी, सचपल, तीक्ष्ण नयन।

वह अरिहन्ता, वह अक्षय भट
जिसके भुज से जन्मित है जय।
जिसके पीछे थी एक बार
घूमी लंका के बीच प्रलय।

वह देख रहा है निशिचर दल
रवि देख रहा ज्यों तम वरूथ।
झंझा हो जैसे ढूँढ़ रहा
अति कम्पित, शंकित मशक-यूथ।

ये वानरपति सुग्रीव वीर
बल-शील, भक्त दृढ़, महाधीर।
दिखलाने को जो रण-कौशल
दिखते से थे चंचल अधीर।

प्रभु उपकारों का करने को
आतुर बैठे प्रतिकार आज।
सेवा की कठिन साधना का
लेने बैठे उपहार आज।

था रक्त नसों में खौल रहा
कम्पित थे युगुल अधर थर थर।
विषबुझे बाण सम रोम सकल
थे नाच रहे तन पर फर फर।

मुष्टिक बँधती खुलती रह रह
टुक इधर दृष्टि टुक उधर दृष्टि।
जिस ओर वक्र हो गई दृष्टि
हो गई उधर ही प्रलय-वृष्टि।

नथनों से साँस निकलती थी
मानों झंझा की भूल-धार।
नख नख आतुर थे देने को
निशिचर का वक्षःस्थल विदार।

प्रस्तुत थे उत्सुक थे उन्मुख
थे युगुल श्रवन पल्लव प्रवीन।
ध्यानावस्थित थे प्रभु मुख से
सुनने को बस एक, दो, तीन।

अंगद वह अंगद, बालितनय,
दृढ़ व्रती ब्रह्मचारी अंगद।
कल ही तो जिसने क्षार किया
था निशिचर-पति का दम्भित मद।

वह एक चरण था विजय खम्भ
वह एक चरण था विजय स्तूप।
वह एक चरण जय परिचायक,
वह एक चरण अरिकाल रूप।

वह एक चरण संकल्प सुदृढ़
वह एक चरण था वज्र खण्ड।
वह एक चरण रिपु मद-हन्ता
वह एक चरण था काल-दण्ड।

जिसकी रज चुम्बन को रावण
का नमित हुआ था हेम क्रीट।
कब उठा सके अंगद गज पद
राक्षस सेना के सुभट कीट।

वह नीति-कुशल सज्ञान सचिव
जिसके हितकारी सदुपदेश।
की अवहेला कर देखेगा
रावण अबुद्ध वंशावशेष।

पद वीर वही अंगद दिखते
हैं ज्यों कपि कुंजर रण मदान्ध।
भय उत्पादक नख, वेष, रदन
मानो केहरि शोणित तृषान्ध।

नल नील वीर, चंचल अधीर
उन्मत्त रणोन्मुख. खर दूषण।
सेना का प्रति कपि चाह भरा
बानर सेना का था भूषण।

तन पर रक्षा को वस्त्र नहीं
केवल भक्ती का एक कवच।
सर पर रण क्रीट कहाँ किसके
बस अभय हस्त छायित कुछ कच।

बल शक्ति पराक्रम जो कुछ है
वह है उन चरणों की पद रज।
बस मर मिटने की अतुल साध
केवल प्रति सैनिक की सज धज।

तलवार कहाँ थी ढाल कहाँ
बल्लम फरसा बरछा कृपाण।
नि:शस्त्र निरस्त्र सभी बानर
थे बस लक्ष्मण के पास बाण।

गज कहाँ, कहाँ रथ बाजि तुरग
रण वाद्य कहाँ, क्या रण वाहन।
पद-त्राण कहाँ पद रक्षा को
पथ में कंटक हो या पाहन।

उस ओर निशाचर की सेना
नानायुध से सब विधि सज्जित।
माया के अस्त्र-शस्त्र संकुल
प्राणान्तक भीषण विष मज्जित।

थे दनुज सुभट बलमय प्रचण्ड
भय उत्पादक ज्यों यमकर कृति।
था नाश अवश्यम्भावी पर
कब फला पराक्रम बिना सुकृति।

पापों का बोझ सदा डूबा
संतरित रहा बस एक पुण्य।
घन तमोराशि बेधित करता
दीपक का ज्योतित कर नगण्य।

नभ घन घुमण्ड अति ही प्रचण्ड
ले उड़ी पवन की एक साँस।
जब छिड़ा ज्ञान का एक शब्द
विस्मय समूह कब रहा पास।

पाखण्ड कहाँ कब टिक पाया
सद्धर्म जहाँ करता प्रकाश।
वेदों की पावन छाया में
कब रह पाया अन्धविश्वास।

जिस उर में प्रभु चरणानुराग
कब शेष रहा वासना त्रास।
आत्मोत्सर्गिक सत्कर्मों से
कायिक प्रपंच का हुआ ह्रास।

संतोष भानु के उदित हुए
अवशेष रहा कब तिमिर लोभ।
कब मोक्ष मार्गगामी को कर
पाया विचलित कायत्व क्षोभ।

मानव मन में यदि व्याप्त हुआ
किंचित भी सत्संगिक विवेक।
निर्मूल नष्ट होतीं तत्क्षण
मन की दैहिक इच्छा अनेक।

नल, नील, सुशेष, वेगदर्शी
गज, गवय, मैन्द, हर, जाम्बवान।
सन्नादन, धूम्र, प्रमार्थि, श्वेत
शतबली, गन्धमादन महान।

सुग्रीव, ऋषभ, केसरि, गवाक्ष,
हनुमान, द्विविद, अरुक्रथन, चण्ड।
अंगद, सुशरभ, कपि पनस, विनत,
खर, कुमुद, रम्भ अति ही प्रचण्ड।

वानरी सैन्य • के महारथी
रचते थे विक्रम चक्र व्यूह।
उत्फुल्ल उमंगित कपि सारे
थे उछल रहे कर हूह हूह।

पद विचलित लेश न हो सकते
बरु टूट गिरे नभ के तारक।
ऐसी ही कठिन प्रतिज्ञा कर
बैठा था प्रति कपि प्रण पालक।

जब गिरि सुवेल से बढ़ी सैन्य
हो उठा प्रकम्पित दिक् मण्डल।
दैत्यों को अशकुन दिखे और
देवों को हुए शकुन मंगल।

बन गया रण-स्थल दो पल में
लंका नगरी का महल महल।
बानर का मन था गया बहल
लंकावासी का दहल दहल।

दूरी से बानर को तक तक
होती निशिचर-छाती धक धक।
सब गिर पड़ते थे मुँह ढक ढक
पुरुषार्थहीन होकर थक थक।

यह अड़ा कीश वह डटा कीश
छिन इधर कीश छिन उधर कीश।
यह चढ़ा कीश वह बढ़ा कीश
चट गया पीस पट कटा शीश।

कँपते हैं नर-नारी थर थर
लुकते छिपते घर घर डर डर।
कपि रहे पीस सब को धर धर
बस छोड़ नारि, बालक, जर्जर।

मच गई भयानक सी घड़ घड़
लंका के उर में थी भड़ भड़।
कट रहे शीश से थे धड़ धड़
गिर रहे मुण्ड सौ सौ पड़ पड़।

कंचन कंगूरे तोड़ तोड़
महलों के गुम्बद फोड़ फोड़।
करते प्रहार असुरों पर कपि
राक्षस भगते रण छोड़ छोड़।

लाखों असुरों की मुण्डमाल
युत लंका में चण्डी कराल।
चमकाती फिरती लाल लाल
घर में बीथिन में रक्त ज्वाल।

कपियों ने छेड़ी विजय कूक
उठ पड़ी दनुज के हृदय हूक।
रह गये डरे से सभी मूक
हो गया कलेजा टूक टूक।

हृदयान्तर ऐसा हुआ हाल
कपि दिखा, दिखा साक्षात काल।
भूली असुरों की चाल जाल
बजने वाले कट गये गाल।

सरपट महलों पर चढ़ झटपट
कुछ खीस दिखा भागे मर्कट।
यह जाति जन्म ही की नटखट
हँसते ज्यों दनुज रहे मरकट।

लंका गिरि का पत्थर पत्थर
दिखता शाखामृग के सर पर।
हैं यह ही इनके अस्त्र प्रखर
जो फोड़ रहे हैं सर पर सर।

पर्वत पर पर्वत के पत्थर
फिंक गये, हो गये धुस, गिरिवर।
जो अभी अभी थे उच्च शिखर
बिछ रहे विचूर्णित पथ पथ पर।

कोई धाया तरुवर उखाड़
कोई आया लेकर पहाड़।
कोई छाया सर पर दहाड़
डर कर खाते निशिचर पछाड़।

धड़ धड़ से सर सर काट काट
रण थल आहत से पाट पाट।
कपि दिखा रहे थे अभिमानी
रावण को उसका ही ललाट।

कर पुच्छ-वेष्ठित उस कपि ने
फेंका निशिचर को सिन्धु पार।
कर दिया किसी का इस कपि ने
प्राणान्त गदा सी पुच्छ मार।

हुंकार रहे, फुंकार रहे
ललकार रहे कपि बार बार।
नयनों के आगे मृत्यु देख
कर सके असुर कब नयन चार।

कपियों को अपने जीवन में
है आज मिला सार्थक जीवन।
मर भक्त करों से असुरों का
हो गया आज पावन जीवन।

विरुपाक्ष, महोदर, इन्द्रजीत,
शुक सारण और प्रहस्त वीर।
रावण सेना को विकल देख
हो उठे सजग, कम्पित, अधीर।

रण में मायावी दैत्य लगे
करने कुछ माया का प्रयोग।
करने कुछ काम लगा रण में
दशकंधर का आसुरी योग।

मच गया भयानक अंधकार
छा गई पवन में विकट धूल।
हो गया दृष्ट क्षण में अदृश्य
अस्पृश्य हो गया कहीं स्थूल।

कहुँ रुदन घोर पीड़ा कठोर
कहुँ चीत्कार कहुँ अट्टहास।
कहुँ रुधिर स्रवन कहुँ मांस हवन
कहुँ उच्च शिखर कहुँ खड्ग भास।

कहुँ घन गर्जन कहुँ जल वर्षण
दामिनि नर्तन कहुँ उपल स्रवन।
कहुँ तीव्र पवन कहुँ शान्त पवन
कहुँ उष्ण पवन कहुँ शीत पवन।

छिन सिंधु सुदृढ़ जड़, छिन सनीर
छिन धरणि प्रकंपित छिन गंभीर।
छिन दुस्तर वन, गिरि गह्वर धन
छिन वर्षि सुमन छिन लगत तीर।

छिन रव प्रलयंकर छिन सुराग
छिन अग्नि उपल छिन वज्रकाल।
छिन यम कराल छिन असि कपाल
छिन चढ़त भाल फुंकरित व्याल।

कहुँ तीक्ष्ण रदन कहुँ तीव्र नयन
कहुँ शोणितमय जिह्वा कृपाण।
कहुँ भयद दैत्य भूधराकार
हैं ढूँढ़ रहे कहँ भक्त-प्राण।

लघु बानर हुए सभीत देख
उछले हनुमानांगद नायक।
माया के विविध प्रपंच कटे
छूटा जब रघुपति का शायक।

जय राम सुप्रभु जय राम सुप्रभु
की गूँज उठी तत्त्क्षण जय ध्वनि।
ले उड़ी पवन मंगल जय-स्वर
हो उठे प्रफुल्लित व्योम अवनि।

नर हन्त, समुन्नत अरु निकुम्भ
घननाद, अकम्पन, कुम्भकर्ण।
आदिक असुरों को देख हुआ
हनुमान वर्ण ज्यों तप्त स्वर्ण।

ज्यों धूम्रहीन इक अग्नि शिला
जगमग सतेज भस्मक सदीप्त।
बढ़ चला रण-स्थल में मानो
बढ़ता नूतन दिनकर प्रदीप्त।

विकराल युद्ध छिड़ गया पुनः
अति घोर सुभट जो उभय ओर।
भिड़ गये, प्रदर्शित करते थे
निज युक्ति, कला नाना अथोर।

जब राक्षसेन्द्र ने था देखा
निज कटक अर्ध आहत बहुभट।
कर दिया युद्ध में तब उसने
संचित सेना की शक्ति प्रकट।

आगे था आया मेघनाद
कौशल दिखलाने का ले प्रण।
अनहोनी लगा देखने था
लंका में रण का प्रति पल क्षण।

यह मरा कीर्श वह कटा कीश
बानरी सैन्य हो रही क्षीण।
लखि तर्ज उठे प्रभु आज्ञा से
रण थल में थे लक्ष्मण प्रवीण।

घननादी अतुल पराक्रम से
हो उठा प्रकम्पित दिक्मंडल।
हो उठे सशंकित सकल वीर
कँप उठे महा तरु गिरि जंगल।

लक्ष्मण के व्रती शायकों ने
सब छिन्न किया उसका प्रकोप।
था सारा रण थल और गगन
अपने बाणों से दिया तोप।

मच गई पुनः राक्षस दल में
भारी हलचल भीषण खलभल।
अवशेष शक्ति संचित करके
धाया तब रावण-पुत्र प्रबल।

पर अजित सुमित्रा-सुवन वीर
बढ़ता ज्यों दावानल प्रवाह।
था पारावार कहाँ उसका
उसकी अतुलित शक्ती अथाह।

तब हो मदान्ध लक्ष्मण उर में
राक्षस ने छोड़ी ब्रह्म-शक्ति।
चुभ गई हृदय में रुकती क्यों
रुकती तो होती फिर अभक्ति।

जल बिन्दु सिन्धु में गिर करती
उद्वेलित जैसे क्षीण लहर।
तिमि शक्ति-पुंज लक्ष्मण उर में
स्वाधीन हुई, मिलि, शक्ति प्रखर।

हो गये अचेतन थे लक्ष्मण
शक्ति-प्रहार से मूर्च्छा वश।
गिर गया धनुष, गिर गये तीर
गिर गया वक्ष से था तरकश।

तब लखि निशस्त्र मानी निशिचर
करने आया सम्मुख प्रलाप।
ज्यों पुण्य सूर्य के सोते ही
बढ़ने लगता है तिमिर पाप।

चाहा ले जाना लक्ष्मण को
पर अटल हुआ उनका शरीर।
कब हिला सका धरणीधर को
अति भीमकाय मण्डूक वीर।

देखा अनर्थ, पवनात्मज ने
धाया तब सरुष, प्रचण्ड उधर।
पवनागम से भगते मच्छर
त्यों दनुज हो गये तितर बितर।

हनुमान ले चला लक्ष्मण को
उरवेष्ठित कर, दृग से जल भर।
ब्रह्माण्ड विकल, कम्पित तन थर
पहुँचे उस स्थान जहाँ रघुवर।

अनुमान लिया सब कुछ क्षण में
बोले प्रभु समयोचित सुबैन।
बस एक निमिषि में ले आया
सब विधि समर्थ हनुमत, सुषेन।

अरुणोदय तक लानी होगी
भेषज, लखि बोले वैद्यराज।
अन्यथा शक्ति उपचार नहीं
होते प्रभात होगा अकाज।

खिंच गई सतत सबके मुख पर
भारी चिन्ता की रेख मलिन।
उत्फुल्ल कुसुम दल पर पड़ती
वेदनापूर्ण ज्यों राशि तुहिन।

अन्तर्यामी थे देख रहे
इस ओर कभी दूसरी ओर।
दुख सराबोर, कंपि नयन कोर
कहुँ गगन छोर, कहुँ हो न भोर।

हनुमान

जीवन का सार्थक दिवस आज
है आँक रहा सब कपि समाज।
करने को बैठे हैं आतुर
सब प्रभु की कुछ सेवार्थ काज।

यह मुक्ति दिवस, यह महा दिवस
बैकुण्ठ प्राप्ति का आज दिवस।
आत्मार्पण का त्योहार आज
जीवन का केवल पर्व दिवस।

कपि भालु सकल लघु या विशाल
इकटक कर जोरे शान्त मौन।
प्रभु की संकेत प्रतीक्षा में
हैं सोच रहे बड़-भाग्य कौन।

उन भक्तों के बहु पुराय तौल
श्रीराम सजल लोचन सधीर।
देखने लगे उस ओर जिधर
करबद्ध निम्नमुख महाबीर।

सर्वेश, स्वयंभू, सर्वोपरि
जिसके वश में नभ छोर छोर।
भक्तों को दे सेवावकाश
ले रहे आज हनुमत निहोर।

तत्क्षण कृतार्थ हो भाग्यवान
दराडवत हुआ अंजनिकुमार।
आशीर्वाद देते छलका
प्रभु नयनों में प्रेमोद्गार।

अति कृपा भार से बेसुध-सा
हनुमान हुआ पा के अशीष।
होते विलम्ब लखि, घन गर्जन
कर बोले 'जय हनुमान' कीश।

तब पवनात्मज तेजावतार
भीषण गँभीर पुरुषार्थशील।
विक्रमी, साहसी, महाधीर
अति पराक्रमी स्वान्तः सुशील।

बलपुंज विपुल कौशल प्रवीन
उर अतुलित प्रभु चरणानुराग।
वह भक्त कि जिसके लिए राम
चरणारविन्द काशी प्रयाग।

अति शक्तिवान, अति युक्तिवान
अति भक्तिवान अनुरक्तिवान।
कपि हनूमान, सब विधि सुजान
सेवक महान, सामर्थ्यवान।

हो उठा सजग, उसके नस नस
में उठा वीररस तुरत जाग।
रग रग में दौड़ा बज्र-रक्त
सारा शरीर हो उठा आग।

द्रुत साँसों से मानो लेगा
भूमण्डल का सब पवन शोष।
तत्क्षण निकाल देगा किञ्चित
कर स्मरण वीर निज मातु कोख।

दिखता थर थर है पुच्छ दण्ड
हिलती फर फर है पुच्छ लोम।
झंझा उत्पादन करने को
हैं आतुर कपि के रोम रोम।

नख हैं उखाड़ने को व्याकुल
भेषज समेत सारा गिरिवर।
बस भेषज औ भेषज का गिरि
मस्तक में खाता है चक्कर।

दृढ़-व्रती हुआ प्रस्तुत क्षण में
सबसे मिलकर समयानुकूल।
सबने बरसाये स्नेहयुक्त
नयनों से शुभ कामना फूल।

सुग्रीवराज को कर प्रणाम
श्रीराम चरण को करि प्रणाम।
प्रिय बन्धु अंगदादिक महान
सबको यथावत् करके प्रणाम।

औ' सब देवों को करि प्रणाम
माताञ्जनि का करि हृदय ध्यान।
प्रभु हेतु समर्पित हो सहर्ष
हनुमंत कर रहा है पयान।

फा० ३

हनुमंत वीर उत्सुक अधीर
अति वज्र देह करके विलोल।
सचपल छलाँग से कूद पड़ा
यात्रा पथ पर जय राम बोल।

रजनी तम तोम हटा भागी
खिँच गया अलौकिक रेखा पथ।
हनुमत नयनों में व्याप्त हुई
क्या जाने कैसी ज्योति अकथ।

है इधर शून्य है उधर शून्य
केवल आगे है एक लक्ष।
कुछ अन्य देख पाते कब हैं
हनुमंत वीर के नयन दक्ष।

जलनिधि, पहाड़, वन, विटपावलि
खाई व खड्ड, सरिता व झील।
कुछ भी मग में अटका ज्यों ही
त्यों ही पताल ले गया लील।

बस एक ध्येय, बस एक लक्ष
बस एकाशय है भेषज गिरि।
बस एक ओर उज्ज्वल पथ है
अरु अन्य ओर घनघोर तिमिर।

मारुत आरोहित मारुत सुत
मारुत से भर के रोम रोम।
कल्पना सदृश बढ़ता जाता
चीरता वेग से अखिल व्योम।

जब नभ में टूट गिरा तारा
दिखने लगती उसकी लकीर।
पर नील गगन में आज वीर
है खींच रहा हनुमत लकीर।

बढ़ता जाता, बढ़ता जाता
सनसन् सनसन् सनसन् सनसन्।
पीछे उसके रहती जाती
आँधी बन बन कुछ तीव्र पवन।

भूतल पर एक मची हलचल
नभ तल पर एक मची गड़बड़।
भय आकुल हो तारे सारे
भागने लगे खड़बड़ खड़बड़।

रवि रुका रह गया वहाँ, जहाँ
आ गया याद हनुमत शैशव।
चुपके निशितारक बन ढुलका
सब भूल गया अपना वैभव।

नभ में प्रमुदित गन्धर्व देव
देखने लगे पौरुष महान।
भक्ती का तेज पराक्रम औ'
बल शौर्य और विज्ञान ज्ञान।

लंका में हनुमत यात्रा का
रावण ने जब यह सुना हाल।
मग में तब कालनेमि द्वारा
फैलाया माया का कुजाल।

पर भक्तों को क्या फाँस सका
है कभी जगत-माया-बन्धन।
मकड़ी के जाले रोक सके
बन में हैं क्या केहरी गमन।

क्या काँच कभी है रोक सका
जाने से दिनकर का प्रकाश।
कब ओस भार से रुक पाया
है खिलती कलिका का विकास।

हो सके कभी क्या हैं अधीर
कुछ चिन्ताओं से धैर्यवान।
क्या मेघ-विन्दु से कभी हुआ
विचलित कोई पर्वत महान।

जगती की भीषण तुहिन राशि
कब रोक सकी है सूर्य्योदय।
कुछ क्षीण फूँक की साँसों से
क्या छोड़ सका है मेरु निलय।

क्या अग्निशिखा को बढ़ने से
है रोक सका नवनीत ढेर।
क्या मूर्ख शृगालों के गर्जन
से रुक पाया है कहीं शेर।

क्या कभी जितेन्द्रिय को विचलित
कर पाये मनसा के विकार।
दानी के कर को रोक सके
कब हैं लोलुपता के विचार।

क्या लौह शृङ्खलाओं से भी
रुक सकी कल्पना की उड़ान।
चिरकाल तलक काया ही में
परिवर्द्धित रह पाया कि प्राण।

कुछ ओस विन्दु भी सोख सके
हैं क्या भास्कर के अग्निबाण।
आगम वसन्त कब रोक सके
बोलो करील के शुष्क प्राण।

कब दुष्ट कामना से रुकता
सन्तों में सद्गुण का प्रवाह।
केवल अगस्त्य का नाम लिये
कब सूख सका सागर अथाह।

जिस हृदय विराजे राम-चरण
उसमें कुवासना का प्रवेश।
जाह्नवी के पावन अंक मध्य
फिर भी क्या किंचित पाप शेष।

जो भक्त पिये हैं प्रेमासव
उनको विष भी होता अमृत।
अपनापन खो बैठे हैं जो
उनको क्या माया क्या संसृति।

हनुमान बढ़ा ही जाता निशि-
चर माया की अवहेला कर।
ज्यों तिमिर बेधकर बढ़ती ही
जाती है रवि की किरण प्रखर।

कब बहिरेन्द्रिय है रोक सकी
दृढ़ मनसा के सात्त्विक प्रबन्ध।
कब पंक गन्ध है रोक सकी
पंकज-उर की सौरभ सुगंध।

निर्मल सर जल को कर पाया
कब दूषित है दूषित तन-मल।
उस मल देने की चेष्टा में
दूषित तन हुआ स्वयं निर्मल।

श्री हरिभक्तों के चरण-स्पर्श
से होते सभी पाप पावन।
जिमि रवि किरनों में मिल जाता
पावस प्रभात का धुँधलापन।

माया निज काया छाड़ चली
कपि काया की छाया होकर।
हरि दाया से पाया उसने
मुनि भाया पथ माया खोकर।

पारस को छूकर कंचन-सा
उज्ज्वल हो जाता जिमि कि सार।
जिन कलुष कणों का त्याग करें
जिमि दीप ज्योति में अन्धकार।

हनुमत सपुच्छ सिन्दूर बदन
नभ में पुच्छल तारा समान।
बढ़ता जाता आगे आगे
वेगावतार - सा प्रगतिवान।

उसको इक क्षण विश्राम कहाँ
वह रुक सकता फिर किस प्रकार।
उसकी मनसा में स्थान कहाँ
पा सका अन्य कोई विचार।

माया के लाख प्रलोभन हों
लाखों प्रकार के आकर्षण।
वह भक्त सुदृढ़-संकल्प उसे
कब रोक सका कोई इक क्षण।

था पवनात्मज के कंधे पर
कितना उत्तरदायित्व घोर।
'जय' 'मरण' न जाने क्या लेकर
रजनी अंचल में सुप्त भोर।

थी अर्द्ध निशा अवशेष अभी
हनुमन्त वीर जैसे कि तीर।
जा पहुँचा भेषज गिरि समीप
भेषज अन्वेषण हित अधीर।

रजनी तम-तोमित रही किन्तु
था लिया पवनसुत ने उखाड़।
दैविक कौशल से तीक्ष्ण बुद्धि
इक क्षण में बूटी का पहाड़।

कंदुक इव भीषण गिरि उछाल
ले शेष नाग-सा बल अपार।
'जय राम' बोल कपि लौट पड़ा
निर्दिष्ट मार्ग पर नभ मँझार।

उसके मन में उल्लास और
तन में उत्फुल्लित रोमावलि।
नयनों में कुछ कुछ गीलापन
आनँद की बाढ़ी पुलकावलि।

पुतली में उसके दीख रहा
लक्ष्मण का हँसता-सा आनन।
है लगा दीखने नन्दन-सा
जो महा विभीषण था कानन।

कपि देख रहा है, क्या ? लक्ष्मण
मूर्च्छना विगत कुछ कुछ चेतन।
लोचन पल्लव को खोल अधर
में छलकाये मंजुल कम्पन।

भाई की रोती गोदी में
बरसाते कुछ मुसकान सजल।
श्री रामचन्द्र के शोक निरत
जलमय नयनों के भाव बदल।

चेतन हो लक्ष्मण चूम रहे
प्रभु के मंगल चरणारविंद।
औ' चूम रहे प्रभु लक्ष्मण का
अति हर्षोत्फुल्ल मुखारविंद।

यह झाँकी दिव्य मनोरम कपि
के देख रहे हैं सजल नैन।
अवरुद्ध कण्ठ गद्गद मन में
हैं बन्दी जय जयकार बैन।

कपि देख रहा है अपने को
भी खड़ा हुआ जोड़े युग कर।
नत मुख करुणामय के सम्मुख
साधे सुदीठि श्री चरनों पर।

प्रभु ने सहसा दे अभय हस्त
खींचा कपि को निज हृदय ओर।
वह विस्मृतात्म-सा लोट पड़ा
उन चरणों पर आनँद विभोर।

अपने सुभाग्य पर देख रहा
ईर्षित हैं नभ के देव सकल।
'हनुमान धन्य' 'हनुमान धन्य'
हैं बोल रहे ऋषियों के दल।

यह चित्र खींचता नयनों में
मस्तिष्क पटल पर यही चित्र।
गुनता मन में सुषमा निधि के
सौजन्यपूर्ण पावन चरित्र।

था बढ़ा चला आता नभ में
सन सन सन सन चीरता पवन।
आन्दोलित-से होते जाते
पथ के नीचे के जल थल वन।

जाने के अति भीषण प्रवाह
से थे अशान्त आतंकित मन।
फिरने की प्रलयंकर गति से
हो गये चेतना शून्य बदन।

जब अवध गगन पर वह आया
मच गई नगर में इक हलचल।
तब भरत सोचने लगे कि है
आया मायावी निशिचर खल।

तत्काल भरत जन प्रतिपालक
ने लिया हाथ में धनुषवाण।
हरने को नभ पथगामी के
बस एक वाण से क्षुद्र प्राण।

छोड़ा शायक कपि के तन में
जा लगा वज्र शक्ती समान।
श्रीराम सुमिरि श्रीराम भवन
में लुढ़क पड़ा तब हनूमान।

इक टीस भरत के अन्तर में
उठ गई सुना जब राम नाम।
समझे अपराध हुआ भारी
विधि हुआ सर्वविधि अहह वाम।

जो राम भरत की नयन ज्योति
जो राम भरत के जीवन धन।
जिस राम नाम का पाठ निरत
करता प्रतिपल प्रतिक्षण तन मन।

जिस बन्धुराम के पद-त्राण
को मान रहे थे भरत इष्ट।
जिसके चिन्तन के सम्मुख था
समझा सब स्वर्गिक सुख निकृष्ट।

बस जिसके दर्शन हेतु रही
नयनों में केवल ज्योति शेष।
सुनने को जिसका नाम रही
केवल श्रवनों में शक्ति शेष।

जिसके दर्शन की आशा में
संचरित अभी तक क्षीण साँस।
जिसकी आगम तिथि के गिनते
हैं भरत प्राण पल दिवस मास।

जिसके नामोच्चारण से हैं
करते नित प्रति जिह्वा पावन।
जिस मंजु मूर्ति को हृदयंगम
रखते प्रतिक्षण विरहाकुल मन।

जिसके अनुचर की भी पदरज
है भरत हेतु चन्दन कपूर।
जो है भभूत जो संजीवनि,
जो भव्य चूर्ण, जीवनी मूर।

जिसके पितु मातु बन्धु भ्राता
त्राता सब कुछ थे एक राम।
जिसने जब देखा एक राम
जिसने उच्चारा एक नाम।

अह आज उन्हीं के हाथों से
इक राम भक्त पर यह प्रहार।
दुर्दैव न्याय की रेख खिंची
क्या है तेरे ढिग इस प्रकार।

विभ्रमित, चकित, विस्मित व्याकुल
पहुँचे आहत तन कपि समीप।
मूर्च्छना विवश अवलोकि भक्त
अति दुखित हुए रघुकुल प्रदीप।

करबद्ध, अश्रु-जल स्रवत, बदन
कम्पित, कातर मन भरतराज।
प्रतिशोध हेतु संकुल करते
अपने जीवन के सुकृति साज।

यदि मन बच काया से मेरे
क्षण कण में व्यापे एक राम।
यदि प्राणों के बदले मेरे
उर में हैं स्थापे एक राम।

यदि राम विराजे उर-प्रदेश
यदि रामचरण पर प्रीति शेष।
मुझमें यदि रघुकुल रीति लेश
मेरा अब तक यदि भक्त वेश।

मेरे सम्मुख यदि एक राम
मेरे मुख पर यदि एक नाम।
करुणानिधान आनन्द धाम
को मन से यदि करता प्रणाम।

यदि हों अबोध सेवक विचारि
मुझ पर दयालु नयनाभिराम।
तो विगत शूल श्रम हो कपिवर
स्वीकार करो मेरा प्रणाम।

यदि निशि प्रति प्राची में उलास
यदि कंटक वन में कलि सुवास।
यदि निर्झराश्रु में सजल हास
नभ नील मध्य रोरित विलास।

यदि पुनः राम प्रभु मिलन आश
मेरे जीवन की एक आश।
यदि राम भानु का ही केवल
इस अवधपुरी में है प्रकाश।

यदि प्रभु सेवार्पित हो जाना
मेरे मन की इच्छा ललाम।
तो विगत शूल श्रम हो सत्वर
स्वीकार करो मेरा प्रणाम।

सुनि भरत वचन मलयानिल सम
विकसे हनुमत के नयनाम्बुज।
आलिंगन को बढ़ उठे सतत
श्री भरतराज के आतुर भुज।

पुलकावलि जाग्रत रोम रोम
हर्षावरुद्ध थे कण्ठ उभय।
छलकी नयनों में प्रेम पुलकि
आबद्ध युगुल अविराम हृदय।

अर्द्धोन्मीलित अधरों पर ही
आ करके थे रुक गये वचन।
उपहार परस्पर देने को
मुक्ताश्रु भरे थे सजल नयन।

तत्क्षण विलम्ब, अति जान, कहा
मारुत सुत ने अपना परिचय।
सब युद्ध छन्द शक्ती प्रबन्ध
अरुणोदय से लक्ष्मण को भय।

अति दुखित हुए कर श्रवण भरत
सौमित्र मूर्च्छना, सीय हरण।
निशिचर दल भीषण एक ओर
प्रभु दल में केवल बानरगण।

अति कुटिल भाग्य मेरे कारण
प्रभु झेल रहे संकट महान।
किंचित सहाय हो सका मैं न
उलटे रोकी गति हनूमान।

धिक्कार पराक्रम को मेरे
धिक्कार महा इस पौरुष पर।
पथ का कंटक मैं हुआ मूढ़
धिक्कार लाख इस जीवन पर।

जग कहता मुझको रामबन्धु
पर मेरी यह बन्धुत्व सीम।
भाई को तापस भेष दिया
सिय मातु हेतु संकट असीम।

जग कहता मुझको लखन बन्धु
पर मेरा यह भ्रातृत्व प्रेम।
साकेत विराजा मैं पामर
औ' लखन राम चौकसी नेम।

विधि ने कुछ अंक कुअंक लिखे
सिय राम लखन को भूमि शयन।
भोजन को वन के कन्द-मूल
आवर्तन को तरु छाल वसन।

सहचर अनुचर वन रीछ भालु
दुख के साथी पथ के कंटक।
विश्राम हेतु तरु की छाया
जब तप्त मार्ग में जाते थक।

पावस में कड़क कड़क जल जल
कम्पित होती दामिनि अधीर।
तब वन में कम्पित सिय मुद्रा
लखि, घन बरसाते अश्रु नीर।

जब घटाटोप रजनी तम में
केहरि कर उठता है दहाड़।
फटता समीर का वक्षस्थल
चिल्ला उठता भीषण पहाड़।

जब हिंसक बढ़ता है आगे
वन सघन कंटकी हृदय चीर।
द्वै नेत्रों में भर हिंस्र ज्वाल
और रदन नखों में असि व तीर।

मुख में है जिसके वज्र पंक्ति
है रोम रोम जिसका त्रिशूल।
तलवार सदृश जिह्वा लपलप
देती पत्थर-सा हृदय हूल।

नथनों में मानुष गन्ध भरे
जिह्वा में मानुष रक्त प्यास।
फैलाता वन जन्तुओं बीच
प्राणान्तक दारुण भय व त्रास।

तब कानन में बैठे भाई
देते मुझको आशीर्वाद।
भयभीत सीय भी उसी समय
कह उठती होंगी पुनर्वाद।

तब कह उठते होंगे नभ के
सारे तारकगण 'धन्य भरत।'
तब कह उठते होंगे वन के
तरु निर्झर, पर्वत, 'धन्य भरत।'

जब विपुलायुधं भूषित आते
होंगे निशिचर के दल के दल।
कुछ मायावी कुछ अति कराल
कुछ महावीर कुछ महाप्रबल।

जिनकी माया के सम्मुख है
जाता ऋषियों का श्राप काँप।
जिनकी साँसों से पुण्य लोक
में जग उठते हैं महापाप।

जिनके स्पर्शन से मलय शीत
फुंकारित होती लू समान।
जिनके भीषण पद-घर्षण से
कुण्ठित हो उठती भू महान।

रण में यह प्रलयंकर समूह
जब आता होगा एक ओर!
जिनके विकराल प्रलापों से
थर थर कँप उठता गगन छोर।

औ' रामलखन जिनके सँग में
कुछ वानरगण दूसरी ओर।
केवल भक्ती का अस्त्र लिये
निर्भय बढ़ते पथ मरण ओर।

निशिचर सहर्थ निशिचर समर्थ
असमर्थ भालु कपि राम विरथ।
संग्राम क्षेत्र के तब कण कण
कह उठते होंगे 'धन्य भरत।'

इस आपद का मैं एक मूल
इस सब विपत्ति का मैं कारण।
प्रिय बन्धु बने वनचर पदचर
मैं करता सिंहासन धारण।

छा रही भरत के अन्तर में
थी महाग्लानि भारी अशान्ति।
संज्ञा विशून्य से होते थे
उद्विग्न, व्यग्र, अति क्षीण कान्ति।

तब किया प्रबोधित कपिवर ने
लखि भरत हृदय अति दुखित म्लान।
मत करें ग्लानि, यह सत्य जान
प्रभु को तुम प्रिय लछिमन समान।

तुम भक्त शिरोमणि धन्य भरत
प्रभु को तुम हो प्राणों सम प्रिय।
तुम धर्म निरत, सत पथगामी
अति उज्ज्वल तन मन अन्तर हिय।

श्रीराम भानु के सम्मुख क्या
टिक सकते हैं निशिचर उलूक।
श्रीराम भास्कर के आगे
क्या दिख सकते हैं दनुज लूक।

मत क्षुभित सखे तुम हो किंचित
प्रभु पद भक्ती के एक अस्त्र
के सम्मुख हैं नगण्य सारे
पुरुषार्थ, पराक्रम अस्त्र-शस्त्र।

वह भक्ति भालु कपि रोम रोम
में व्याप्ति, भरे चिर शक्ति प्रबल
विच्छिन्न निमिष में कर देता
प्रभु पदानुरागी कपि, रिपुदल।

लखि समय, भरत थे बोल उठे
कपि हो तुम मम शायकासीन।
भेषज गिरि युत पल में पहुँचा
देगा लंका यह शर प्रवीण।

हनुमंत वीररस जाग उठा
कह उठे वज्र हनुमन्त भार।
क्या सह पावेगा भला कहीं
यह क्षीण तुम्हारा बाण सार।

प्रभु तव चरणारविंद दाया
से पहुँचूँगा निश्चय तुरन्त।
मेरी आगमन प्रतीक्षा में
हैं जहाँ विराजे जगत कन्त।

कर स्मरण राम प्रभु का प्रताप
मन वंदि युगुल श्रीचरण कमल।
आशीष भरत जी से लेकर
कपि उछल पड़ा ले स्फूर्ति तरल।

मन में प्रभु प्रति भरतानुराग
करता सराहना बार बार।
बढ़ता सवेग जा रहा उड़ा
हनुमत मानो वेगावतार।

क्षण क्षण में योजन पर योजन
बढ़ता जाता था वेगवन्त।
नयनों में नाच रहे उसके
मूच्छित लक्ष्मण संग जगत कंत।

इतनी द्रुतगति थी हनुमत की
हो गये पैर उसके अदृश्य।
नभ और धरा थे देख रहे।
अतुलित भक्ती का अतुल दृश्य।

रामविलाप

निशि अर्द्ध विजित, हनुमन्त रहित
दिखते चिन्तित, कपि, भालु दुखित ।
लखि भ्रात अचित प्रभु राम रुदित
यदि भानु उदित, भारी अनहित ।

गत अर्द्ध निशा हनुमन्त हीन
हिय काँप उठा अति प्राण विकल ।
हनुमन्त कहाँ, हनुमन्त किधर
प्रभु पूछ रहे प्रतिक्षण प्रतिपल ।

दर्शी त्रिकाल हैं देख रहे
हनुमन्तागम आँखें पसार।
अवलोकि रहे सब चित्र लिखे
लीलामय की लीला अपार।

है आज सौम्यरस भ्राजमान
कुछ करुणा की छाया लेकर।
बैठे हैं नारायण महान
लघु मानव की माया लेकर।

हैं ज्योतिपुंज , में भासमान
कुछ जगती के नश्वर तम कण।
अमरत्व अंक में आज लिये
क्षय वसुधा का कायिक जीवन।

मुसकान मृदुल से जिसकी हँस
उठते हैं नभ के लोक लोक।
मुसकान स्वयं वह खोज रहे
हैं ज्योत्स्नानन में भरे शोक।

त्रैलोक्य तापहारी जो हैं
भव वारिधि की जो एक पोत।
वह आहत मन चिन्ता निमग्न
कुछ अश्रुकणों से ओत-प्रोत।

पाषाणों को जीवन देती
जिनके श्रीचरणों की पदरज।
मोक्षदा, प्राणदा, जीवनदा
वह आज ढूँढ़ते हैं धीरज।

जो शोक विमोचन दुख भंजन
हरते भक्तों के त्रिविध ताप।
नर कृत्य हेतु वसुधांचल में
करने को बैठे हैं विलाप।

जिसकी केवल इच्छा ही से
देवों को लब्ध पदार्थ चार।
वह आज दैव शुभ इच्छा की
करने को बैठे हैं पुकार।

जो हैं असीम वह माया के
बन्धन में बैठे आज ग्रस्त।
जो सुषमानिधि करुणानिधान
वह दीन दुखी हो रहे त्रस्त।

जिसकी स्वेच्छा से इंगित हो
प्रतिभासित हैं संसृति-विधान।
वह शोक रजनि में ढूँढ़ रहे
हैं धूमिल-सा स्वर्णिम विहान।

जो हैं अनादि, जो हैं अनन्त
जो मध्यहीन जो हैं चिरायु।
क्षिति जल पावक आकाश मुक्त
परिवर्द्धित कर सकती न वायु।

वह आज पंचभौतिक दैहिक
सन्तापों से हैं सन्तापित।
वह सौख्य सिन्धु माया के वश
हैं आज हो रहे शोकान्वित।

•

बस एक बूँद निज जल कण में
है स्वयं डूबता आज सिन्धु।
अपनी ही श्यामलता में तो
है लोप हो रहा आज इन्दु।

जो सारे जग के आश्रय हैं
वह आज विराजे निराधार।
जो सारे जग के पोषक हैं
वह आज विराजे निराहार।

जिसने त्रैलोक्य प्रकाश किया
उसके अन्तर में अन्धकार।
मुसकान लुटाते जो सबको
उनके नयनों में अश्रुधार।

जो परब्रह्म जो परमेश्वर
जो जगत्-पिता जो श्रेयस्कर।
वह क्यों अबोध बालक से हैं
छलकाये करुणा के सीकर।

निज अंक मध्य श्रीराम आज
ले लक्ष्मण का मूर्च्छित शरीर।
करते हैं रो रोकर विलाप
हैं रहे गगन का वक्ष चीर।

हृदयास्थ किये परिरम्भित तन
युग हस्त शीष पर फेर फेर।
विश्राम निरत सौमित्र वदन
अनिमिष नयनों से हेर हेर।

होके कातर तन मन अधीर
उच्चरित कर रहे शोक वचन।
संज्ञाविशून्य चेतनाहीन
शिथिलांग, अश्रुजल स्रवत नयन।

हा बन्धु वत्स, हा! सखे प्रिये
हा लक्ष्मण हा प्यारे सुभ्रात।
सौमित्र कहाँ तक सोओगे
बोलो तो कब होगा सुप्रात।

कब नयनाम्बुज विकसें सुशील
वचनामृत छलकावें सुबैन ।
कब राम मधुप मन डोल डोल
तव प्रीति मलय में लहे चैन ।

हा सखे आज कम्पित उरथल
हा सखे आज हैं प्राण भ्रान्त ।
सौमित्र तुम्हारा बन्धु राम
उद्विग्न, व्यग्र, व्याकुल अशान्त ।

रोते हैं नभ के तारक दल
रोता है शशि औ' रुदित पवन ।
रोता तरु तरु पल्लव पल्लव
रो रहे सुमन रो रहा विजन ।

रो रहा आज है सागर तट
रो रहा उदधि का प्रति जल कण ।
रो रही धरा, रोता दिगन्त,
रोता पताल रो रहा गगन ।

देखो न सखे निर्जीव तत्त्व
हैं आज हो रहे सभी क्लान्त ।
सौमित्र तुम्हारा बन्धु राम
उद्विग्न, व्यग्र, व्याकुल अशान्त ।

गाण्डीव रो रहा, रुदित तीर
वल्कल के उर में उठी पीर।
वीरासन रोता भूमि पड़ा
बन्धुत्व रो रहा भरे नीर।

रो रहा प्यार रोता पौरुष
रो रहा पराक्रम हो अधीर।
क्यों हाय मूर्च्छनावश होकर
सो रहा भूमि पर सरुष वीर।

बोलो न सखे कुछ तो बोलो
क्यों हाय हो रहे आज शान्त।
सौमित्र तुम्हारा बन्धु राम
उद्विग्न, व्यग्र, व्याकुल अशान्त।

रो रहे देख लो बानरगण
रो रहे सभी अनुचर सहचर।
हो रहे शिथिल तन अंगदादि
मूर्च्छना सभी पर रही उतर।

अपने वन के साथी सारे
प्रिय वत्स देख लो आज विकल।
सब शोक सिन्धु में डूब रहे
बोझिल-से जो थे महा चपल।

टुक नयन खोल दो वत्स सभी
हैं आतुर, आकुल और श्रान्त।
सौमित्र तुम्हारा बन्धु राम
उद्विग्न, व्यग्र, व्याकुल अशान्त।

भाई तुमको तो राम रहा
था सदा प्राण से भी बढ़कर।
भाई, था राम हेतु तुमने
छोड़ा जग वैभव छोड़ा घर।

वन के दिन तुमने काट दिये
भाई! बस राम राम रटकर।
भ्रातृत्व निबाहा है तुमने
तन मन में राम नाम रखकर।

है वही राम रो रहा दुखी
तुम कैसे लक्ष्मण अरे शान्त!
सौमित्र तुम्हारा बन्धु राम
उद्विग्न, व्यग्र, व्याकुल अशान्त।

यों तुम्हें छोड़ देना था यदि
तो क्यों आये थे आग्रह कर।
साकेत न सूना हो पाता
वन विपति न पड़ सकती तुम पर।

गुरु, स्वजन, सुजन, परिजन, पुरजन
सब की छाया रहती तुम पर।
मिल जाता फिर तुमसे प्रियवर
मैं भी, पितु-आज्ञा पालन कर।

हा लखन तुम्हारा बन्धु प्रेम
कर रहा बन्धु को आज क्लान्त।
सौमित्र तुम्हारा बन्धु राम
उद्विग्न, व्यग्र, व्याकुल अशान्त।

भाईपन की सौगन्ध तुम्हें
भ्रातृत्व भाव की तुम्हें शपथ।
लक्ष्मण होने की शपथ, राम
के भक्ति भाव की तुम्हें शपथ।

रघुवंश वीरता क्षीण आज
उस बल प्रताप की तुम्हें शपथ।
खलगण संहारण के व्रत की
अरिदल भक्षण की तुम्हें शपथ।

तुम नेत्र खोलकर जाग उठो
जग उठे राम का हृदय प्रान्त।
सौमित्र तुम्हारा बन्धु राम
उद्विग्न, व्यग्र, व्याकुल अशान्त।

हँसते हैं राक्षस लंका के
हँसता है कायर निशिचर-दल।
हँसता रावण का सब समाज
प्रमुदित हैं आज हो रहे खल।

जैसे दिनेश के छिपने पर
हँस उठते नभ में तारक खल।
हँसने लगते हैं मुख में ले
मुस्कान क्षीण खद्योत सकल।

उत्सवरत लंका के वासी
सारे खल आनन्दित महान।
सौमित्र तुम्हारा बन्धु राम
विह्वल, व्याकुल, उद्विग्न म्लान।

सीता को अब तक पा न सका
लक्ष्मण तुम क्यों मुख रहे मोड़।
मेरी आशाओं की कलियाँ
प्रिय बन्धु तुम्हीं क्यों रहे तोड़।

वनवास अरे क्या समझा था
होगा मुझको यह विपद वास।
प्रिय सीता को खोना होगा
लक्ष्मण हित सहना पड़े त्रास।

प्यारे कुछ तो बोलो मुख से
हा देख रहे क्या कठिन प्राण।
सौमित्र तुम्हारा बन्धु राम
विह्वल, व्याकुल, उद्विग्न म्लान।

सीता जब पूछेगी मुझसे
उत्फुल्ल मना वदना आतुर।
है कहाँ गया प्यारा लक्ष्मण
सौमित्र कहाँ अपना अनुचर।

तब क्या उत्तर दूँगा बोलो
कैसे कह दूँगा कुसंवाद।
उस कोमलांगि के शुचि मन में
कैसे भर दूँगा मैं विषाद।

हा वत्स जानकी किस प्रकार
सह लेगी यह संकट महान।
सौमित्र तुम्हारा बन्धु राम
व्याकुल, विह्वल, उद्विग्न म्लान।

वन में प्रिय बन्धु लुटेगा, यदि
मुझको होता यह कहीं ज्ञात!
तो एक बार पितु आज्ञा की
अवहेला की सोचता बात।

है अवधि बीतने को आई
तिथि आई फिर जाने की घर।
पर हाय कहाँ से महाविपद
चलते चलते छाई मुझ पर।

उठ अब न सकेंगे मेरे पग
बोझिल मेरा तन हृदय प्रान।
सौमित्र तुम्हारा बन्धु राम
व्याकुल, विह्वल, उद्विग्न म्लान।

ऐ शक्तिपुञ्ज ऐ तेजतुंग
क्यों आज शक्ति से हो अशक्त।
क्यों आज रगों में शान्त हुआ
हे वीर खौलता हुआ रक्त।

भुजदण्ड न आज फड़कते हैं
अधरों का आज कहाँ कम्पन।
क्यों सरुष नयन हैं बन्द सखे
क्यों शिथिल आज चंचल तन मन।

क्यों हुए शान्त रस के प्रेमी
क्या हुआ तुम्हारा रस प्रधान।
सौमित्र तुम्हारा बन्धु राम
विह्वल, व्याकुल, उद्विग्न म्लान।

वह देखो मेघनाद आया
करता मेघों-सा रणनिनाद।
वह देखो दशमुख से रावण
है उगल रहा अपना प्रमाद।

वह देखो असुरों की सेना
है चली आ रही इसी ओर।
अपने रणगर्जन से रह रह
कम्पित करती है गगन छोर।

कैसे देखें यह दृश्य नैन
सुन लें कैसे यह रोर श्रवन।
है राम पूछता तुम से ही
कुछ तो बतला दो ऐ लछमन।

वह देखो दुष्ट दशानन है
क्यों बढ़ा आ रहा इसी ओर।
दिखलाने को अपनी माया
जो अति दुस्तर भीषण अथोर।

वह देखो पर्वत काँप उठे
है धरा विकम्पित रही डोल।
आकाश गिरा-सा पड़ता है
है क्षीर सिन्धु का रहा खौल।

लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! प्यारे लक्ष्मण
रोको भू होती है स्मशान।
सौमित्र तुम्हारा बन्धु राम
विह्वल, व्याकुल, उद्विग्न म्लान।

अह सीते तू अब तक बैठी
उस वृक्ष तले जो है अशोक।
क्यों अरे दे रहा पर अशोक
अपनी छाया में तुम्हें शोक।

उठ हट वह देख चला आता
है धूर्त दशानन उसी ओर।
लक्ष्मण है कहाँ कि जो उसका
विच्छिन्न करे आनन कठोर।

लक्ष्मण सीता की लाज बचा
उठ शीघ्र उठा अपनी कमान।
सौमित्र तुम्हारा बन्धु राम
विह्वल, व्याकुल, उद्विग्न म्लान।

ऐ भरत छोड़ दे आस सखे
अब राम कहाँ औ' कहाँ अवध।
चौदह ही क्या सौ बार सखे
अब बीतेगी वनवास अवधि।

पर राम और लक्ष्मण सीता
अब हो न सके साकेत ओर।
वात्सल्य तुम्हारा पा न सके
विधना पर अपना कौन ज़ोर।

तुम चक्रवर्ति हो राज करो
भूलो भाई का भाईपन।
लक्ष्मण सोया मैं भी खोया
सीता को हर ले गया विजन।

नक्षत्रो तुम हो देख रहे
क्या ऐसा ही दैवी विधान?
क्यों मूक हो रहे हैं दिगन्त
क्यों फट न पड़ रहा आसमान?

मानव पर दानव है विजयी
क्या वसुन्धरा का यही न्याय?
क्यों कुपित हो गये सब मुझ पर?
कोई भी तो होते सहाय।

क्या कभी किसी का धोखे से
भी सोचा था मैंने अनहित।
वरदान सरीखे श्राप लिये
मानव मर्यादा पालनहित।

भाई अंगद तुम देख रहे
बोलो बोलो जल्दी सुबैन।
कब बन्धु पुनः चेतन होगा
मम मन में बरसेगा सुचैन।

सुग्रीव अरे सोचो कुछ तो
अति लाघव तुम ऐसा उपाय।
जिससे प्यारे भाई लक्ष्मण
की यह दुस्तर मूर्च्छना जाय।

खर-दूषण नल-नीलादि अरे
क्या कोई हो सकता सहाय।
कुछ जाम्वन्त तुम ही सोचो
भाई कुछ तो सोचो उपाय।

सीते ऐं तुम भी देख रही
नयनों में नीर भरे छल छल।
परवश वन्दिनी बनी कातर
वदना तन मन हिय प्राण विकल।

ऐं अश्रुधार अविरल देवी
भीगे कपोल भीगा अंचल।
अवरुद्ध कण्ठ से क्या कहती
मत रो सीते मत हो विह्वल।

सीते मत रो मत रो प्रेयसि
रोको अपने नयनाश्रु बिन्दु।
मैं प्रण करता हूँ एक बाण
से सोखूँगा लंकास्थ सिन्धु।

यदि गुरु चरणों पर भक्ति शेष
यदि सत् पथ पर अनुरक्ति शेष।
यदि मनसा में प्रण भक्ति शेष
यदि भुजदण्डों में शक्ति शेष।

यदि काया में कुछ रक्त शेष
यदि मुझमें कुछ रामत्व शेष।
यदि किंचित भी वीरत्व शेष
भ्रातृत्व शेष, बन्धुत्व शेष।

यदि त्रेता में कुछ वक्त शेष
तो सुन तू पापी निशिचरेश।
यदि प्रात: तक लक्ष्मण अशेष
तो तुझे न देखेगा दिनेश।

लंका जलनिधि तल धाँसेगा
विध्वंसक मेरा एक बाण।
अरुणोदय तक निशिचर कुल में
अवशेष न होगा एक प्राण।

लंका के ऊपर के अकाश
को कर दूँगा क्षण में विलीन।
क्षण में कर दूँगा शून्य यहाँ
इसको करके मैं पवनहीन।

भू वायु क्षेत्र में शेष नहीं
होगी निशिचर की एक साँस।
बन धूल रसातल जावेगा
निशिचर के तन का रक्त मांस।

कुछ और अधिक इससे भी है
भीषण कठोर क्षत्रिय का प्रण।
जिसको देखेंगे देखेंगे
क्षण में आनेवाले कुछ क्षण।

ऊपर नभ में यह तारे-से
जो दीख रहे हैं विपुल लोक।
यह बच न सकेंगे इन पर भी
होगा मेरे प्रण का प्रकोप।

यदि इनमें भी निशिचर होंगे
तो कर दूँगा निशिचरविहीन।
बस एक निमिष में एक बाण
से केवल एकासनासीन।

पाताल तलातल सुतल वितल
जितने भी होंगे नभ जलस्तल।
सबको कर देगा दनुज-हीन
मेरे प्रण का केवल इक पल।

मैं कर दूँगा रविमण्डल में
सब पाप क्षार बस पुण्य उदय।
वह वह्नि जगा दूँगा क्षण में
जिसको समझेंगे दनुज प्रलय।

वह सिन्धु बहा दूँगा पल में
हो जाय चतुर्दिक बस जलमय।
पाषाण डूब जायेंगे सब
संतरित रहेंगे सदय हृदय।

इति अभी नहीं मेरे प्रण की
इससे भी होगा और अधिक।
सुन लें श्रवनानावृत होकर
ऊपर नभ के नक्षत्र पथिक।

प्रण बाण दिखा देगा मेरा
निशिचर संहारण विधि नवीन।
हो जावेगा सारा अब तक
का रणकौशल इतिहासहीन।

मैं दनुज रक्त से भूतल का
अपवित्र करूँगा नहीं वत्स।
कर देगा शून्य सदेह इन्हें
मेरे तरकस का तीर दक्ष।

इतने पर भी मेरे इस प्रण
की हो न सकेगी अवधि पूर्ण।
यद्यपि हो जावेगा सारा
इतने में निशिचर कुल विचूर्ण।

मैं अन्तिम बाण चलाऊँगा
जिसके उर में होगी विस्मृति।
जिससे सारे नभमण्डल में
रह शेष न पावे निशिचर स्मृति।

सब भूल जायँ ऐसे मानो
राक्षस की कभी रही न योनि।
मैं सृष्टि प्रवर्तन कर दूँगा
ऐसी जैसी कि रही न होनि।

तब राम कहूँगा अपने को
तब समझूँगा निज को क्षत्रिय।
तब समझूँगा अब मुझको भी
लगता है कुछ कुछ रघुकुल प्रिय।

तब समझूँगा मुझमें पौरुष
समझूँ निज को सौमित्र बन्धु।
सौमित्र ! अरे सौमित्र हाय
क्यों पुन: उमड़ता करुण सिन्धु।

भाई लेटा है मूर्च्छनावश
मैं करता हूँ प्रलाप अटपट।
भाई की शक्ती लोप हुई
शक्ती भाई से सकी न हट।

यह सब होगा पर इससे क्या
होगा वह मातु हृदय शीतल।
यह सारा प्रण पौरुष मेरा
क्या शान्त करेगा वह हीतल।

जो अवधि अन्त पर लिये थाल
में सजी आरती उत्सुक मन।
है बाट जोहती आत्मज की
अनिमिष नयनों से प्रतिपल क्षण।

वात्सल्य छलकता है उर में
शब्दों में भरा हर्ष कम्पन।
सानन्द पधारे शिशु मेरा
प्रतिक्षण कर रही देव वन्दन।

मुख में ले शुभ आशीष वचन
औ' नयनों में औत्सुक्य हास।
हिय रोम रोम में भर हुलास
बाहों में सुत परिरम्भ प्यास।

होता होवेगा जिस माता
का स्फूर्तित श्लथ विरहालु गात।
जो कई दिनों से देख रही
होगी सुत आगम का प्रभात।

जो पुत्र तिलक के हेतु हाथ
में खड़ी लिये हो दधि रोचन।
सुत-मुख प्रच्छालन के हित जो
छलकाये मंगल जल लोचन।

मग निरख रही होगी अनिमिष
जो घूम अटा पर बार बार।
जो आगम लघु सन्देश शब्द
सुनने को करती श्रवन चार।

जिसके उर में है छलक रहा
वात्सल्य प्रेम का जीवन पय।
दश चार बरस सुत मुख के हित
जो करती थी चुम्बन सञ्चय

जब लखनलाल को ढूँढ़ रही
होगी करने को आलिङ्गन।
पर आगे क्रूर राम केवल
हा लखन लखन हा कहाँ लखन।

जब कह देगा सब हाल अरे
वह बहकर मेरे दृग का जल।
जब सरस भावनाओं पर छा
यह बरसावेगा वज्र उपल।

जब मूर्च्छित होकर हाय अम्ब
गिर जावेगी खाकर पछाड़।
करुणा क्रन्दन से वह देगी
पाषाणों तक का वक्ष फाड़।

वह दधिरोचर आरती साज
जिसमें था माता का दुलार।
विच्छिन्न भूमि पर शूल बना
तब देवेगा अम्बर विदार।

वह मातु हतमना व्यथित हृदय
अत्यधिक शोक से हो पागल।
उठ बैठेगी फिर खोजेगी
अपने सुत को तन मन विह्वल।

उसको होगा विश्वास नहीं
अपने नयनों पर श्रवनों पर ।
उसकी विह्वलता देख रहा
हूँगा मैं खड़ा खड़ा पामर ।

हा नहीं ! नहीं ! यह दैव नहीं
मै सह न सकूँगा यह प्रहार ।
मैं लख न सकूँगा दृश्य सदय
मैं सुन न सकूँगा चीत्कार ।

वह मातु सुमित्रा जिसने था
मुझको सौंपा अपना दुलार ।
जिसने मेरे संरक्षण में
रक्षित जाना था हृदय प्यार ।

जिसको मेरे भ्रातृत्व प्रेम
पर सदा भरोसा था अपार ।
जिससे सहर्ष आज्ञा पाकर
चल पड़ा साथ लक्ष्मण उदार ।

उसकी थाती कैसे उसको
मैं लौटाऊँगा कहो क्यों न !
कुछ तो बोलो भाई मुख से
क्यों आज हो रहे अरे मौन ।

उर्मिला अरे वह सुकुमारी
जिसको वियोग का मिला प्रणय।
जिसके उर ही में दबी रही
कोमल अन्तर की प्रेमिल लय।

आकुल पलकों में खींच रही
होगी जो भावी स्वप्न मृदुल।
दृग-तारक में होते होंगे।
जिसके जगमग संसार विपुल।

बेचैन मनाने को होती
होगी जो प्रियतम मिलन पर्व।
उस शुभ तिथि के आवाहन को
जप रही मांगलिक सुकृति सर्व।

किस तरह सुनेगी कोमलांगि
यह हृदय विदारक कुसंवाद।
चातकी सहेगी किस प्रकार
बोलो अंगारों का प्रसाद।

हिय में हुलास मुख मंजु हास
नयनों में छलकाये विलास।
उस कुमुद कली को अरे देव
मुखचन्द्र स्थान पर तुहिन त्रास।

उर्मिले आज वह हृदय जहाँ
तव प्रणय कर रहा था निवास।
मुझ अपराधी के कारण ही
है आज शक्ति का हुआ ग्रास।

कौशिल्या प्यारी माता का
कितना कोमल औ' सदय हृदय।
है सुदृढ़ हुआ मेरा शरीर
कर पान उसी का निश्छल पय।

कैसे यह कुसंवाद कहकर
छेदूँगा वह कोमल अन्तर।
कैसे कैकेयी माता पर
छोड़ूँगा मैं यह बाण प्रखर।

परिजन-पुरजन शत्रुघ्न भरत
गुरु सब धिक्कारेंगे मुझ पर।
उन सबके नीर बिन्दु पानी !
फेरेंगे मेरे पौरुष पर।

करते विलाप अति शोकातुर
हा लक्ष्मण हा लक्ष्मण पुकार।
लक्ष्मण के तन को हृदय मध्य
अपने चिपटाते बार बार।

अति कम्पित तन अति व्याकुल मन
जल स्रवत उभय राजिव लोचन।
कैसे अनिष्ट भय से व्याकुल
दीखते ईश भव-भय मोचन।

प्रभु की मुद्रा को देख देख
बानर गण अति व्याकुल मलीन।
सब स्रवत नयन चित्रित मुद्रा
सब मौन और सब शोक-लीन।

भोर

सहसा सन सन के रव से था
गूँजा उत्तर का क्षितिज छोर।
मानो सपुच्छ तारक विशाल
के नभ वेधन का तीव्र रोर।

देखा आता था गगन चीर
सवेग पर्वताकार रूप।
क्षण में प्रत्यक्ष हुआ सम्मुख
हनुमन्त सगिरि मंगल स्वरूप।

मुड़ गये सभी मुख उसी ओर
डट गये सभी दृग उसी ओर।
अति स्नेह सजल सब दृष्टिकोर
हो गये भक्त आनंद विभोर।

प्रभु ने उठ भेंटा भक्त प्रवर
युग बाहुपाश में कर वेष्ठित।
मंगल दृग जल से मज्जित हो
पथ श्रम से हनुमत हुए रहित।

कर रहे प्रकट स्वामी बहुविधि
सेवक प्रति कृत्युपकार भाव।
भक्तों का भाव सदा सर पर
ऐसा ही रघुवर का स्वभाव।

मुकुलित हो उठे सकल बानर
जो क्षण पहिले शंकित अधीर।
ज्यों खिल, हो उठती हरितवेश
शुष्कित कृपि पाते सुधानीर।

उपचार लगे करने सुषेन
मूर्च्छना निवारण हुई तुरत।
शिथिलांग हुए सचेष्ट क्षण में
चेतना हुई मुख पर जाग्रत।

आ रहा छलकता सा देखा
प्राची के अधरों पर उलास।
ज्यों ज्यों खिलता सा दिखता था
लक्ष्मण अधरों पर मंजु हास।

प्राची के नेत्र खुले, लखते
अर्द्धोन्मीलित सौमित्र नैन।
मूर्च्छना विगत होते ही थी
चल बसी गगन से मलिन रैन।

जाग्रत शोणित संचारित लख
लक्ष्मण मुख ज्यों अरविन्द लाल।
हो उठी धरा सिन्दुरित भाल
हो उठा गगन रोरित कपाल।

करवट लेते ही लक्ष्मण के
पृथ्वी ने भी ले ली करवट।
खुलते ही मंगल युग दृग पट
खुल गये प्राच्य नभ के भी पट।

खिल उठा गगन का मलिन छोर
जाग्रत हो उठा तुरन्त भोर।
जो सोया था लक्ष्मण के संग
उठने का लेकर प्रण कठोर।

जग उठी मलय ले सुरभिसार
गा उठे विहंग मंगलाचार।
खिल उठीं धरा के अंचल में।
मंजुल कलियाँ मुख पट उघार।

गूँथने लगी मंजुल ऊषा
निज कर से ज्योत्स्निल रश्मिजाल।
विहँसित श्री लक्ष्मण के उर में
पहिनाती सुन्दर किरणमाल।

हो उठी वनस्पति हरितवेश
हो उठा सजग संसार सकल।
हो उठा श्याम जग ज्योतिपूर्ण
हो उठा गुलाबी गगनांचल।

सागर मुख पर लघु लहर लोल
जग उठीं तरंगित मृदु हिलोर।
प्रमुदित पर्वत का तरु पत्थर
सुषमा से जंगल सराबोर।

बरसे प्रसून नभ जल थल में
अरुणिल अबीर हो गई धूल।
कंटक चुभ गये निशाचर के
उर में बन प्राणान्तक त्रिशूल।

प्रभु हैं उर आवेष्टित करके
निज अनुज निरखते बार बार।
माया गद्‌गद हो फूल रही
जिसके वश मायापति अपार।

जाग्रत हो उठीं कामनायें
स्फूर्तित हो उठे अचेष्ट प्राण।
ले द्विगुण शक्ति बढ़ चलीं सैन्य
गाते प्रभु के जय जय सुगान।

गुंजित हो उठा गगनमंडल
प्रभु-जय बोले जब कपि कपीश।
जय राम भक्त-वत्सल कृपालु
सौमित्र-बन्धु कौशलाधीश।